# राजस्थानी राग-रस-रंग

डॉ. रामेश्वर 'आनन्द' सोनी

# लेखकीय

राजस्थान शब्द से लोकमानस में ऐसे प्रदेश की छवि उभरती है, जहां सूखा, अकाल, अपर्याप्त वर्षा हो, जल का अभाव हो, कृषि-उपज में कमी से जीवन कष्ट प्रद और संघर्षमय हो। पग पग पर अनेक असुविधाओं के कारण जीवन को मृत्यु से संघर्ष करना पड़ता हो। यह सही भी है, किन्तु यहां के निवासियों ने जिजीविषा एवं प्रबल संकल्प-शक्ति द्वारा सारी बाधाओं का सामना किया। यहां के मनुष्य ने प्राकृतिक प्रतिकूलता को अपने बुद्धि कौशल एवं निरन्तर परिश्रम द्वारा वरदान के रूप में परिवर्तन कर दिया। परिणामतः यहां उच्च जीवन मूल्यों की स्थापना हुई और राजस्थान की आन, बान और शान की सृष्टि हुई।

क्षेत्रफल की दृष्टि से आज यह भारत का सबसे बड़ा प्रदेश है। पूर्वी-दक्षिणी अरावली पर्वत भाग में हरियाली के दर्शन होते हैं पर उत्तरी-पश्चिमी भाग शुष्क है। यहां सर्वाधिक गर्मी, लू के थपेड़े, शीत लहर जैसी भयंकर हाड़ कंपाने वाली ठंड सह कर जीवन पनपा है। यहां के लोगों ने पग पग पर खतरों से खेलते हुए बाधाओं का सामना किया और उन पर चढ़ कर पगोथिया बनाया एवं स्वयं का विकास किया है।

हर कठिन अवसर को आनन्दमय बना देने की कला यहां के लोगों में रही है। यहां पैदा होने वाले कैर जैसे कड़वे पदार्थ को नमक के पानी में दीर्घावधि तक रख कर, धैर्य के साथ अंवेर कर मीठा बना लेते हैं। साजी-खार से बाजरी, दाल और फोगले के सुस्वादु ढोकले, खारिया से खीचीया जैसे स्वादिष्ट व्यंजन एवं पापड़ बनाते हैं। सांगरी, कैर, काकड़िये, मतीरे से अनेक सूखे साग तैयार कर पूरे वर्ष साग बनाने में उपयोग ले लेते हैं। यहां मीठे गुटक मतीरे, गूंदिये और जालोटिये, पील्लू जैसे मीठे पदार्थ भी होते हैं जो लू एवं गर्मी से बचाते हैं, स्वास्थ्यवर्धक भी हैं। जालौर में पील्लू से कोकड़ी जैसे स्वादिष्ट पदार्थ बनाते हैं।

यहां के रेतीले बालू के धोरों में घास की अनेक प्रजातियां उत्पन्न होती हैं, जो पशुओं को बलिष्ठ एवं दुधारू बनाती हैं। ग्रामीण लोग इनसे मनुष्य के गठिया, जोड़ों का दर्द जैसे रोगों का सफल ईलाज करते हैं।

यहां शेर, चीते जैसे पशु तो नहीं होते, पर धोरों में जहरीले सांप, बिच्छू, बांडी, परड़, गोयरा और पीवणा (वाईपर, छोटा सांप) जैसे बहुत खतरनाक जीव बहुतायत में पाये जाते हैं। यहां के लोगों ने उनके स्वभाव को परख कर बचाव के तरीके ज्ञात किये हैं। सामान्य जन की सुरक्षा हेतु उन्हें पकड़ना, जहरीले दांत तोड़ कर निकाल देना आदि कार्यों में कुशल लोग भी यहां हैं। वे इन जानवरों के साथ दोस्त की तरह खेलते हैं। मोटे चमड़े के जूते पहन कर घूमना, गोबर से लिपाई किये आंगन में खाट पर सोना आदि सुरक्षा के उपाय जानते हैं। गोबर पर ये विषैले जानवर नहीं चलते, यह उन्हें ज्ञात है।

इन मखमली धोरों का स्वभाव है कि रात्रि को जब वे ठंडे होते हैं तो उनकी छाती पर कोई कितना ही उछल कूद करे, वे सहन करते हैं। यही धोरे जब गर्म हो जाते हैं, तब दो कदम नहीं चलने देते। लगभग ऐसा ही स्वभाव यहां के लोगों का भी है। अतिथि सत्कार, असीम प्रेम, सहयोग आदि से सेवा खूब करते हैं, पर क्रोध आ जाये तो दंड देना जानते हैं। सौ गाली तक माफ करने वाले एक सौ एकवीं गाली पर सुदर्शन चक्र भी चला देते हैं।

एक बात विशेष देखी जाती है कि गर्मी में चलने वाली आंधियों के साथ बालू के कण परेशान अतिथि को गले से लगा कर स्वागत करते हैं, मानों कह रहे हैं कि गर्मी ने बहुत सताया है तुम्हें, फिर भी तुम आये, अतः स्वागत है। "आवौनी पधारो म्हारै देस" यहां का प्रसिद्ध गीत है। ऐसा स्वागत अन्यत्र कहां होता है?

यहां पर मीरा बाई, दादूदयालजी, जसनाथजी, जाम्भोजी जैसे सन्तों ने अध्यात्म और भक्ति की रसधारा प्रवाहित की, तो शूर-वीरों ने अपने जौहर दिखाये। परिणामतः शरणागत की रक्षा करना, अपने दिये गये वचनों का पालन करना, गौ-ब्राह्मण, दीन-दुखियों और असहायों की सहायता करना, मनुष्य से इतर प्राणियों के जीवन की फिक्र करना आदि आदर्श जीवन मूल्यों की रक्षा प्राण देकर भी की गई है। "सत री कमाई में सबका सीर (हिस्सा)" यह जीवन का लक्ष्य रहा है। किसान खेत बोता है तो प्रभु से कहता है - एक हल चिड़ी कमेड़ी के लिए बो रहा हूं। उनके लिए भी अनाज देना। गर्मी में हरिणों की प्यास बुझाने को पानी की व्यवस्था करना, प्रजनन के वक्त गाँव-गली की कुत्तियों को हलवा बना कर खिलाना, रात में बची-खुची रोटी कुत्तों को डालना, कबूतरादि पक्षियों के लिए मिट्टी के बरतन में पानी छत पर रखना एवं दाने बिखेरना आदि कार्य यहां रुचि पूर्वक किये एवं कराये जाते हैं।

यहां के उद्यमी व्यवसाय हेतु अन्यत्र जाते हैं। वहां परिश्रम एवं बुद्धि कौशल द्वारा सफलता प्राप्त करते हैं। एक दोहे में कहा है - "राम कहे सुगरीव नै, लंका कित्ती दूर?" उत्तर मिलता है "आळसियाँ अळगी घणी, उद्यम हाथ हजूर।"

इसका अक्षरसः पालन करते हैं। सफल होने पर भी वे अपनी मातृभूमि से दूर नहीं होते और यहां भी तथा जहां कमाते हैं वहां भी, सार्वजनिक हित में धन का उपयोग करते हैं। यथावश्यक मंदिर, धर्मशालाएं, पाठशालाएं आदि बनवाते हैं। अपने नाम के साथ राजस्थान का नाम उज्ज्वल करते हैं।

हरियाली एवं रंगीन प्रकृति के अभाव की पूर्ति रंग-बिरंगे वस्त्र एवं पोशाकों से की गई है। वर्ष में एक फसल (वो भी मुश्किल से होती है।) एवं पशु-पालन द्वारा जीवन-यापन किया जाता था, तो खाली समय मिल जाता था। उसका भरपूर उपयोग करके संगीत एवं नृत्यादि से जीवन को रसमय बनाने के प्रयास में यहां राग-रंग की लोक सम्पदा का निर्माण हुआ है, जिसने सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठा प्राप्त की है। विगत वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डालें तो संगीत, नृत्य अभिनयादि से जनता का लगाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति के गीत बने, मोटर कार, रेल, पंखा, हवाई जहाजों के स्वागत में गीत बनाये गये। डूंगजी-जवारजी के शौर्य प्रदर्शन पर गीत बना कर पूरे प्रदेश में प्रचारित किये गये, जिसमें कई कलाकारों ने सेवायें दी। जयपुर नरेश द्वारा सांभर झील अंग्रेजों को सौंपने पर गीतों में जनता ने उपालम्भ दिये। यहां तक कि छप्पनिया अकाल और खेती को नष्ट करने वाले टिड्डी दलों से फिर कभी नहीं आने के सन्देश गीतों में दिये गये। आधुनिक चुनावों में वोट देने के लिए महिलाओं का समूह सज-धज कर गीत गाते हुए! गाँवों में देखा जा सकता है। कितना लगाव है गीतों से!

शास्त्रीय संगीत को भी राजस्थान का अपूर्व योगदान है। महाराणा कुम्भा द्वारा रचित "संगीतराज" ग्रन्थ मूर्च्छना पद्धति पर अन्तिम महान ग्रंथ है, ऐसा आचार्य बृहस्पति का कथन है। संगीत के सर्वाधिक हस्त लिखित ग्रंथों का संकलन अनूप संस्कृत लाईब्रेरी, बीकानेर में है। अनेक राग जैसे - देस, जंगला, देस-मल्हार (गौड़ मल्हार के मिश्रण से), मांड, मेवाड़ा, चरचरी, लूहर सारंग, मीरा मल्हार, कालिंगड़ा, परज आदि तथा गांठ चौताला, गांठ झूमरा आदि तालें राजस्थान की देन हैं। ध्रुपद-धमार के डागुर, खण्डार, नौहार घरानों का सम्बन्ध राजस्थान से है। डॉ. जयचन्द शर्मा की नवीनतम शोध के अनुसार जयपुर, बनारस तथा लखनऊ के कत्थक नृत्य के घरानों को स्थापित करने वाले कलाकार मूल रूप से बीकानेर के पूर्वी भाग के गाँवों - सुजानगढ़, भालेरी आदि के निवासी थे। फिल्मों के प्रसिद्ध संगीत निर्देशक खेमचन्द प्रकाश एवं यशस्वी शास्त्रीय गायक पंडित जसराज आदि भी इसी इलाके से सम्बन्धित हैं, जिन्होंने शास्त्रीय संगीत की श्रेष्ठतम ऊँचाइयों को स्पर्श किया है।

समय सदा परिवर्तनशील रहा है। राजस्थान के बारे में उपरोक्त कथनों में नहर के आगमन से कुछ परिवर्तन अनुभव किया जा सकता है। निकट भविष्य में

तेल के भण्डारों की प्राप्ति होने से भी उलट-फेर होगा ही, यह सम्भावना है। अतः इस पुस्तक में परम्परित राग-रंग का लेखा-जोखा रख लेने की इच्छा हुई। राजस्थान की लोक सम्पदा इतनी ही नहीं है, परन्तु मैं जितना एकत्र कर सकता था, उतना ही किया है। राजस्थानी लोक संगीत के पारिभाषिक शब्दों का खुलासा, विभिन्न लोकमंचीय रचनाओं, गेय रचनाओं की विभिन्न शैलियों का वर्णन, व्यावसायिक जातियों का एवं विविध लीलाओं, रम्मतों और तमाशों का, वाणियों के विभिन्न प्रकार, विभिन्न लोकनृत्यों, पर्वों-त्यौहारों आदि के वर्णन के साथ-साथ कुछ स्वस्थ परम्पराओं और बुद्धि परीक्षण के पुराने तरीकों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मूल रूप में गीत नहीं दिये गये हैं, क्योंकि ऐसे गीत असंख्य हैं और अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। लोक वाद्यों में नगाड़े के अलावा किसी वाद्य का वर्णन भी नहीं कर पाया हूं। फिर भी जो कुछ महत्वपूर्ण समझा और हो सका उस पर लिखा है। सम्भव है कि और भी बहुत कुछ लिखना रह गया हो।

अन्त में "तेरा तुझको अर्पण" करते हुए आशा करता हूँ कि लोक संगीत और व्यवहार पर यह पुस्तक कुछ समाधान देगी और ज्ञान-वृद्धि में सहायक होगी। भारतीय विद्या मन्दिर कोलकाता के अध्यक्ष डॉ. बिट्टलदासजी मूंधड़ा और 'वैचारिकी' शोध-पत्रिका के सम्पादक डॉ. बाबूलालजी शर्मा का आभारी हूं जिन्होंने इस ग्रंथ को प्रकाशित कर सबको उपलब्ध कराया है।

भवदीय
**रामेश्वर 'आनन्द'**

डागा सेठिया चौक
असावतों की गवाड़
बीकानेर (राजस्थान)